थार मरुस्थल में
वर्षा जल संरक्षण

HelpAge International
age helps

Gravis

थार मरूस्थल में वर्षा जल संरक्षण
2010

लेखक :
डॉ. जे. पी. गुप्ता

प्रकाशक :
ग्राविस
ग्रामीण विकास विज्ञान समिति
3 / 437, 458 मिल्कमेन कॉलोनी, पॉल रोड़
जोधपुर – 342008, राजस्थान
फोन : 0291-2785317, 2785549, 2785116
फैक्स : 0291 - 2785116
ईमेल : email@gravis.org.in
वेबसाइट : www.gravis.org.in

ISBN 978-81-977042-6-0

सहयोग :
हैडकॉन
हैल्थ एनवायरमेन्ट एण्ड डवलपमेन्ट कन्सोर्टियम
67/145, प्रताप नगर, सांगानेर
जयपुर – 302022, राजस्थान
फोन : 0141-2792994, 2790741
ईमेल : hedcon2004@yahoo.com
वेबसाइट : www.hedcon.org

© ग्राविस

यूरोपियन यूनियन एवं हैल्प एज इन्टरनेशनल (यू.के.) के आर्थिक सहयोग से पी.ओ.सी. परियोजना के अन्तर्गत प्रकाशित

प्राक्कथन

विश्व के सभी हिस्सों में वृद्ध संख्या का अनुपात बढ़ता ही जा रहा है। यही स्थिति भारत में भी बनी हुई है। वृद्धों की इस बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए उचित सुविधाओं व योजनाओं की कमी है, जिसके कारण बहुत से वृद्ध कठिनाईयों के साथ जीने को विवश हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वृद्धों की स्थिति विशेष रूप से चिंताजनक है।

राजस्थान का थार मरूस्थल, दूनिया का सबसे दुर्गम और शुष्क क्षेत्रों में से एक है। यह क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से कमज़ोर, संसाधनों की अल्पता से ग्रस्त और आर्थिक विकास के लिए अपर्याप्त स्त्रोत होने के कारण पिछड़ा क्षेत्र रहा है। इन सभी कारणों की वजह से यहाँ रहने वाली अधिकतर जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे का जीवन व्यतित कर रही है। यही कारण है कि ज्यादातर पुरूषों (युवकों) को क्षेत्र से बाहर पलायन करना पड़ता है और पीछे रहने वाले बुजुर्गों की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती है। यही नहीं बहुत से परिवार टूट भी जाते है और माता – पिता को उम्र के आखरी पड़ाव में विषम परिस्थितियों का सामना अकेले ही करना पड़ता है। इन विषमताओं को महसूस करते हुए और वृद्धों के प्रति बढ़ती अपेक्षा को देखते हुए ग्राविस द्वारा संचालित ''**राजस्थान के कमज़ोर वर्गों में वृद्धों के नेतृत्व द्वारा निर्धनता उन्मूलन**'' (POC) परियोजना जोधपुर और जैसलमेर में चलाई जा रही है।

परियोजना का मुख्य उद्देश्य वृद्धों को उनके अधिकारों से अवगत करवाना और उन्हें आत्मसम्मान से जीने की प्रेरणा देना है। परियोजना द्वारा वृद्धों के स्वास्थ्य, अधिकार, सामाजिक विषमताओं को आधार मानकर अपेक्षित गतिविधियाँ की जा रही है।

वृद्धों में जानकारी और जागरूकता बढ़ाने के लिए ग्राविस द्वारा यह पुस्तिका प्रकाशित की गई है। हैल्पेज इन्टरनैशनल और यूरोपियन यूनियन के सहयोग से यह पुस्तिका प्रकाशित की गई है। इस पुस्तिका के लेखन में डॉ. जे. पी. गुप्ता के सहयोग का धन्यवाद करती हूँ तथा इसके संकलन के लिए हैडकॉन संस्था और ग्राविस से जुड़े साथियों को धन्यवाद देती हूँ।

शशि त्यागी
सचिव

अनुक्रमणिका

(क) पेयजल की दृष्टि से थार मरूस्थल 5

(ख) अकाल का सामना करने के लिए परम्परागत ज्ञान....... 6

(ग) ग्राविस द्वारा विकसित नई जल संग्रहण विधियाँ 7

- टांका.. 8
  - टांका के लाभ 11
  - सावधानी एवं रखरखाव.................................12
- नाड़ी..13
  - नाड़ी की देखभाल...14
  - नाड़ी के जलग्रहण क्षेत्र की देखरेख.................15
  - समुदाय को नाड़ी से लाभ..............................16
  - सुझाव 16
- बेरी..17
  - विशेषता...19
  - लाभ..20
  - ग्राविस द्वारा किए गए सुधार 20

(क) पेयजल की दृष्टि से थार मरुस्थल

पश्चिमी राजस्थान जिसे आमतौर पर 'थार मरुस्थल' के नाम से जाना जाता है, देश के लगभग 10.4 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र में फैला हुआ है तथा इसका क्षेत्रफल 3.2 लाख वर्ग किमी. है। थार मरुस्थल में मुख्यतः जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर व जोधपुर जिले में आते हैं।

अल्प एवं अनियमित वर्षा, वार्षिक वर्षा 100 मिमी. से 400 मिमी. तक या औसतन 250 मिमी. वर्षा, 50 डिग्री सेल्सियस तक भीषण तापमान, 10–15 मिमी. प्रतिदिन तक उच्च वाष्पीकरण दर, 10–40 किमी. प्रतिघंटा तेज हवा की गति (अप्रैल–जून के महीनों में) होती है जिसके कारण मिट्‌टी का कटाव एवं विस्थापन आदि इस क्षेत्र की विशेषताएं हैं। ये परिस्थितियां संचार व्यवस्था, सड़क, रेलमार्ग, जल संरचनाओं, उपजाऊ कृषि भूमि, फसल एवं फसल की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डालती हैं।

पिछले 100 वर्षों के मौसमी आंकड़ों का आंकलन इस क्षेत्र में मध्यम एवं उच्च तीव्रता से पड़ने वाले बहुधा अकालों को दर्शाता है जिससे जल संरचनाओं, घास, पेड़ एवं फसलों के

उत्पादन पर तेज प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरुप यहाँ पर पेयजल, चारा एवं अनाज की बेहद कमी है, जिससे गरीबी, बेरोजगारी एवं मृत्यु की आशंकाएं अधिक हैं। पानी, भोजन एवं आजीविका की खोज में अक्सर लोग अपने पशुओं के साथ पलायन करते हैं।

विपरीत परिस्थितियों के बावजूद मरुस्थल में रहने वाले किसानों ने अकाल से जूझने की कुछ तकनीकें ईजाद कर कठोर पर्यावरण में भी जीना सीख लिया। वर्षा जल संरक्षण (खड़ीन, नाड़ी, टांका आदि), ओरण एवं गोचर का विकास एवं सुरक्षा, पशु आधारित खेती, खेजड़ी एवं बोरड़ी आधारित कृषि व्यवस्था, पशुपालन जैसे गाय, बकरी एवं भेड़ पालना आदि के माध्यम से क्षेत्र के निवासियों को न केवल अनाज, ईंधन की लकड़ी, चारा एवं पोषण मिलता है बल्कि यह किसानों को अकाल से जूझने के लिये आर्थिक रुप से सशक्त करते हैं।

(ख) अकाल का सामना करने के लिये परम्परागत ज्ञान

मरुस्थलीय भागों में पानी एक मूल तत्व है जिसके ऊपर सब निर्भर हैं। समय के साथ मरुस्थल में रहने वाले प्राचीन निवासियों ने इंसानों एवं पशुओं को भीषण अकाल में भी जीवित रहने योग्य बनाने के लिये भूमि संरक्षण एवं उपयोग, जल एवं कृषि संसाधनों के संरक्षण के लिये कुछ तकनीकें ईजाद कीं।

- सामुदायिक चारागाहों का विकास, संरक्षण एवं प्रोत्साहन : जिनमें अकाल के दिनों में भी सेवण, धामण जैसी कुछ घासों की उपलब्धता बनी रहे। इन सामुदायिक चारागाहों को गाँव के पूज्यों का नाम दिया गया ताकि चारागाहों को अवैधानिक घुसपैठ से बचाया जा सके।
- स्थानीय वनस्पतियाँ : जैसे खेजड़ी, बोरड़ी, कैर, कुमट आदि का संरक्षण एवं विकास की ताकि इनसे चारा, ईंधन की लकड़ी, सब्जी का लाभ लिया जा सके। इन वृक्षों के फल एवं फलियों को सुखाकर रखते हैं तथा उन्हें उपयोग में लेते हैं। इनसे किसानों को अच्छा आर्थिक लाभ होता है।
- बाजरा एवं फली की मिश्रित कृषि से उत्पादकता बढ़ती है और अकाल में सुरक्षा बढ़ती है।
- पशुपालन विशेषकर गाय, भेड़ एवं बकरी का पालन एवं प्रजनन। ये अकाल के समय में

आय का वैकल्पिक स्रोत हैं। गाय की कुछ प्रजातियां हैं राठी एवं थारपारकर।

- जैसलमेर में पालीवाल समुदाय द्वारा जल संरक्षण एवं सफल कृषि उत्पादन के लिये किया गया खड़ीन निर्माण।
- पेयजल के लिये घर के आंगन में टैंक का निर्माण कर छत पर से वर्षा जल संग्रहण।
- परम्परागत कच्चा टांका जिसमें पेयजल के लिए वर्षाजल संग्रहित किया जा सके, इन्हें सामान्यत : कुंडा या कुंडी के नाम से जाना जाता है। ये ढांचे खेतों में ढलान वाले स्थानों पर बनाए जाते थे। कच्चा ढांचा होने के कारण पानी कुछ दिनों से कुछेक महीनों तक ही संग्रहित रहता था और ज्यादातर छन कर मिट्टी द्वारा सोख लिया जाता था या वाष्प बनकर उड़ जाता था।
- नाड़ी या तालाब प्राकृतिक संरचनाएं हैं। किसान इन्हें पथरीले जलग्रहण क्षेत्र में वर्षाजल संग्रहण के लिए निर्मित करते थे, जिससे पीने तथा कृषि योग्य पानी प्राप्त हो सके। हालांकि अस्वच्छ परिस्थितियों एवं पशुओं द्वारा इनका पानी दूषित भी हो जाता था । अकाल के समय पानी के अभाव में लोगों एवं पशुओं को पेयजल के लिए मुख्य स्त्रोत नाड़ी ही बचता है। महिलाओं को पैदल चलकर बहुत दूर से घड़े में पानी भरकर लाना पड़ता है। यह परिस्थिति महिलाओं के समय स्वास्थ्य और शक्ति पर बहुत प्रभाव डालती है।

(ग) ग्राविस द्वारा विकसित नई जल संग्रहण विधियां

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि पुराने समय में मरुस्थल वासियों ने पेयजल, पशुओं और कृषि के लिए पानी की जरुरत पूरी करने हेतु वर्षा जल संग्रहण के कुछ ढांचे (टांका, नाड़ी, खड़ीन, बेरी आदि) विकसित किए। हालांकि ये ढांचे अकाल के समय प्रभावी तथा मददगार थे परंतु इनकी संरचना में कुछ खामियां भी थीं, जैसे – बनावट में त्रुटि, सीमित भंडारण क्षमता, अपर्याप्त जलग्रहण क्षेत्र, जल निकास में कमी, अत्यधिक वाष्पीकरण, भूमिगत स्रवण से नुकसान, मिट्टी का अधिक भरना और भंडारण क्षमता का कम हो जाना आदि। ग्राविस ने तीन दशक के अंतराल में कुछ सुधारों के साथ नए उन्नत ढाँचे विकसित किए जिससे भीषण अकाल के दिनों में भी पेयजल की स्थायी आपूर्ति में मदद मिले। इस संदर्भ में

विवरण निम्नलिखित है।

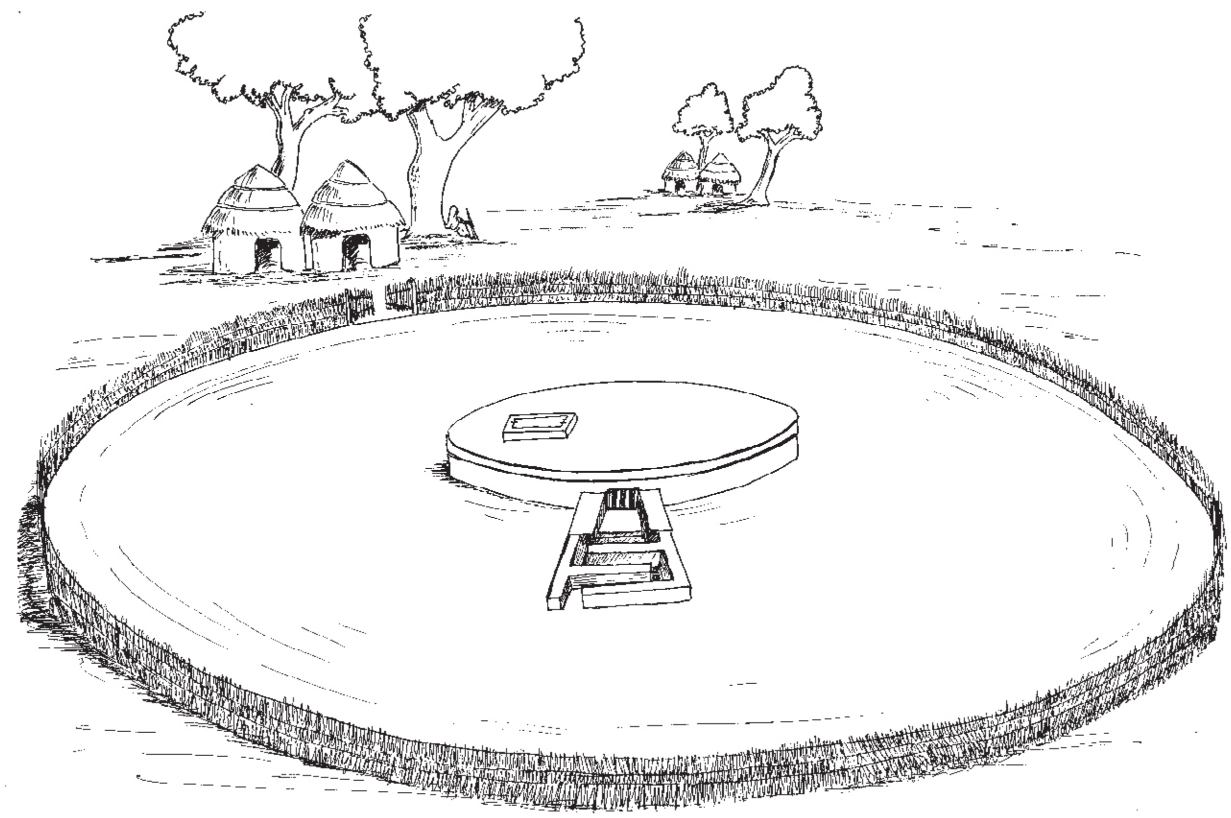

टांका एक भूमिगत ढांचा है जिसमें वर्षाजल का संग्रहण कृत्रिम रुप से बनाए गए जलग्रहण क्षेत्र, प्राकृतिक पथरीले जलग्रहण क्षेत्र या छत पर से आने वाले वर्षा जल से किया जाता है। सीमेंट–कंक्रीट से निर्मित पक्का टांका पानी के वाष्पीकरण या भूमिगत स्त्रवण द्वारा होने वाले ह्मस को रोकता है। इस प्रकार एकत्रित पानी को पीने के काम में भी लिया जा सकता है। क्षेत्रीय दौरों, स्थानीय लोगों से परिचर्चा तथा अवलोकन के बाद ग्राविस ने मिट्टी की गुणवत्ता, वर्षा, जलग्रहण क्षेत्र, परिवार की आवश्यकता और निर्माण सामग्री की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए टांका–निर्माण की तकनीक विकसित की। हालांकि विभिन्न प्रकार के टांके बनाए गए परंतु एक किसान परिवार के लिए 3.3 मीटर X 3 मीटर आकार तथा 20,000 लीटर पानी की क्षमता वाला गोलाकार टांका सबसे अधिक उपयुक्त एवं आर्थिक दृष्टि से ठीक पाया गया। नवीन उन्नत टांकों के मुख्य गुण निम्न हैं :

- 15 से 25 मीटर व्यास का प्राकृतिक या कृत्रिम गोलाकार जलग्रहण क्षेत्र उपयुक्त ढलान के साथ ताकि 50–70 मिमी. की वर्षा में भी पानी का बहाव टांके की तरफ जाए।
- टांके के निर्माण में स्थानीय रुप से उपलब्ध पत्थर या सिमेंट–कंक्रीट का प्रयोग हो।

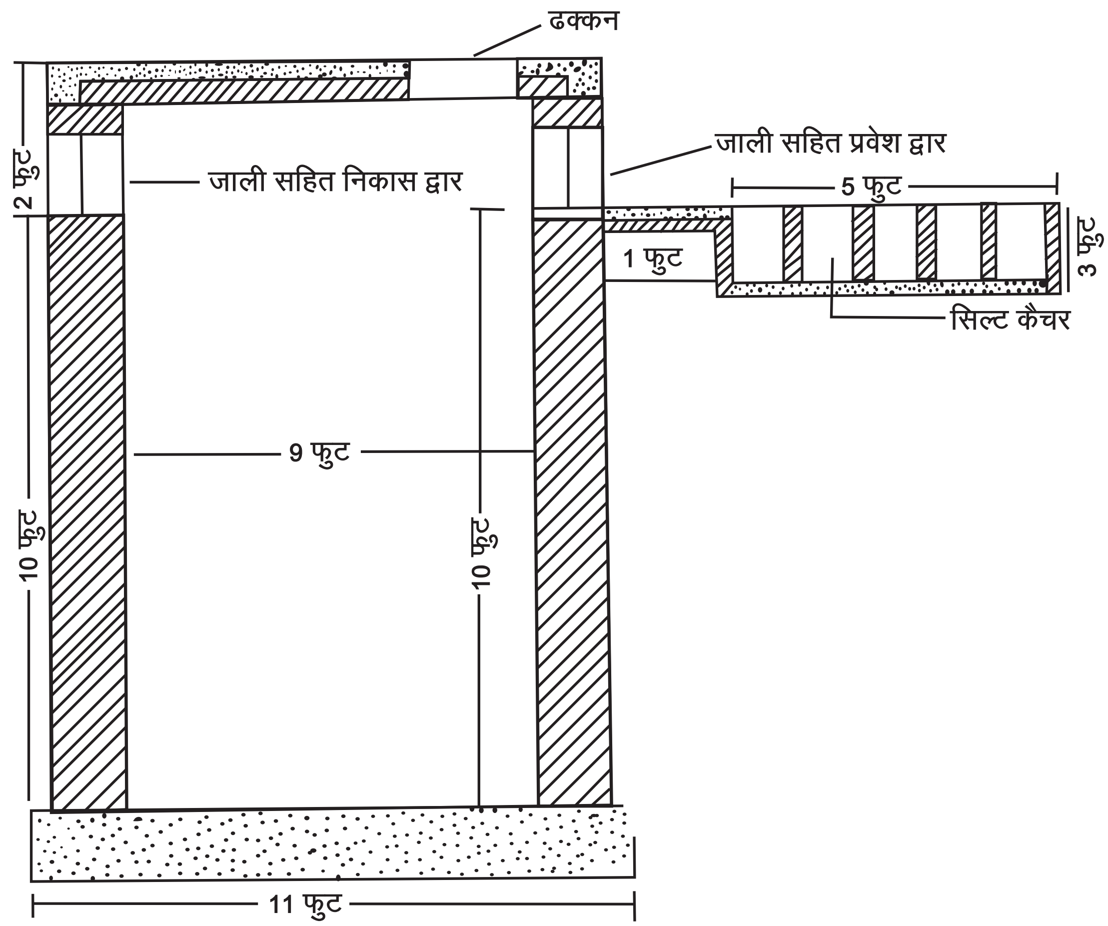

200–300 सेमी. लम्बाई व 30 सेमी. चौड़ाई की पत्थर की पट्टियों से टांके की छत बनाई जाती है जिससे टांके के पानी को दूषित होने से बचाया जा सके। छत पर एक ढक्कन बनाया जाता है जिसके द्वारा पानी निकाला जा सके तथा अन्दर सीढ़ियां भी बनाई जाती हैं। आवश्यकता पड़ने पर सीढ़ियों से उतर कर टांके की सफाई करी जा सकती है।

- जालीयुक्त प्रवेशद्वार और निकासद्वार (30 सेमी. X 30 सेमी.) बनाए जाते हैं जिनसे अतिरिक्त पानी बाहर निकाला जा सके तथा कीड़े मकोड़ों व अन्य जन्तुओं को टांके में प्रवेश करने से रोका जा सके।
- सिल्ट कैचर लगाया जाता है जो कि मिट्टी व अन्य कचरे को पानी के साथ आने से रोकता है। ग्राविस द्वारा प्रयोग में लिये गये दो प्रकार के सिल्ट कैचर के नमूने चित्र में दर्शाए गये हैं।

❖ अधिक वर्षा या पानी के तेज बहाव से टांके को बचाने व मजबूती प्रदान करने की दृष्टि से टांके की दीवारों पर 2–3 सेमी. मोटी सीमेन्ट कंक्रीट की परत चढ़ाई गई।

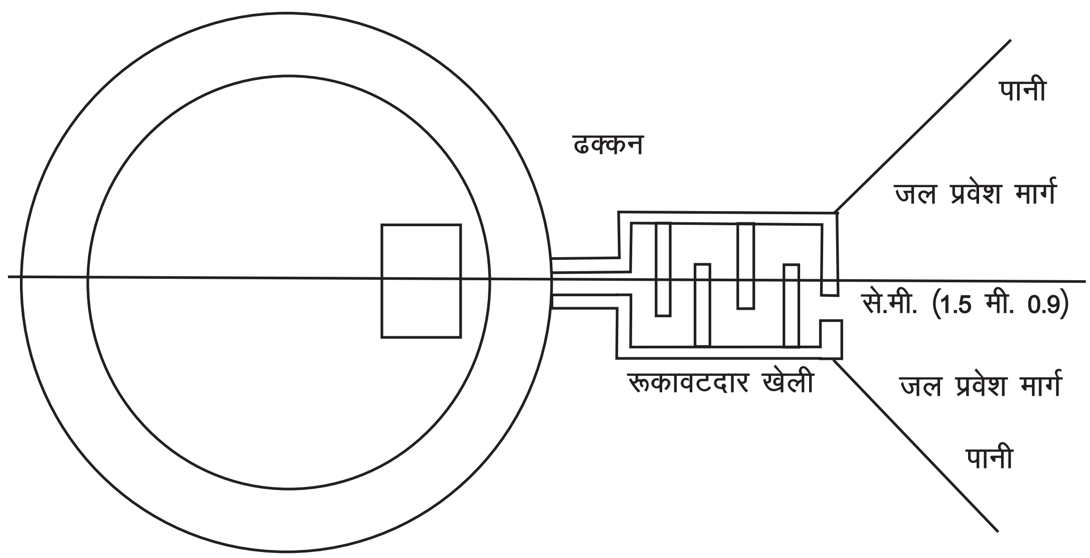

नमूना संख्या 1

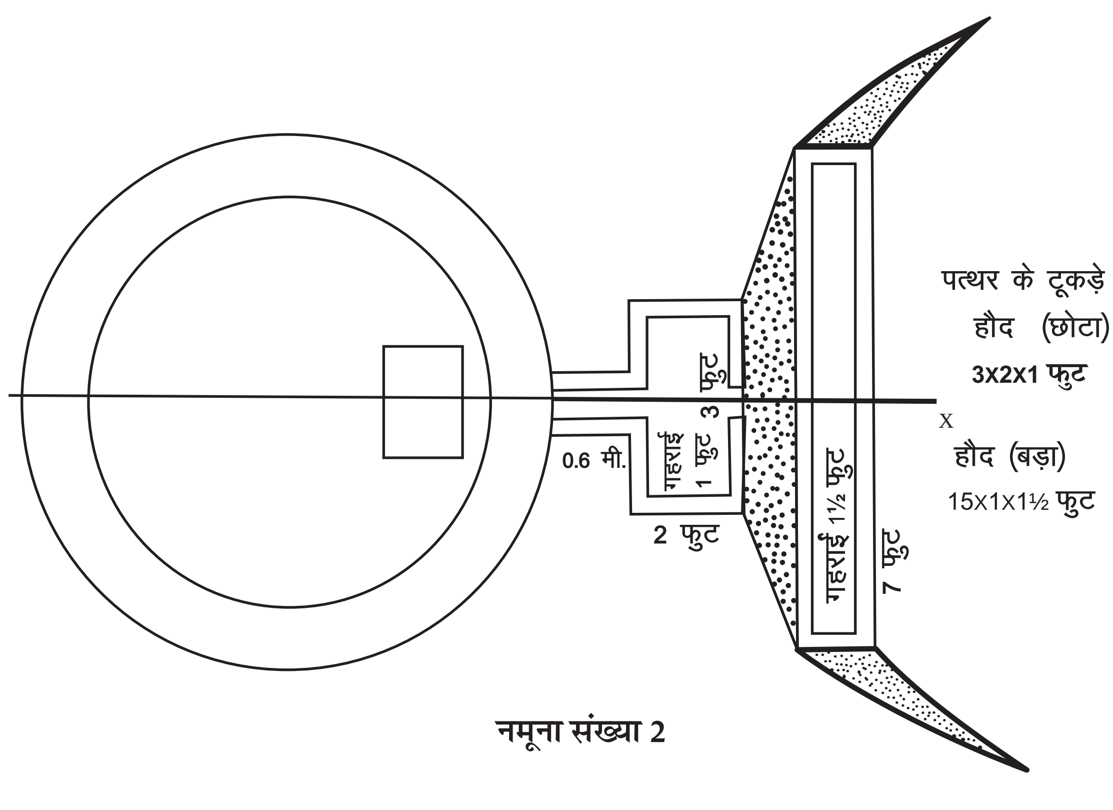

नमूना संख्या 2

टांका के लाभ

- परिवार में सदस्यों की संख्या व पशुओं के आधार पर पानी से पूरा भरा टांका तकरीबन 4–6 महीने तक पानी देता है। घर के प्रांगण में टांके के द्वारा साफ–सुथरा मीठा पानी मिल जाता है।

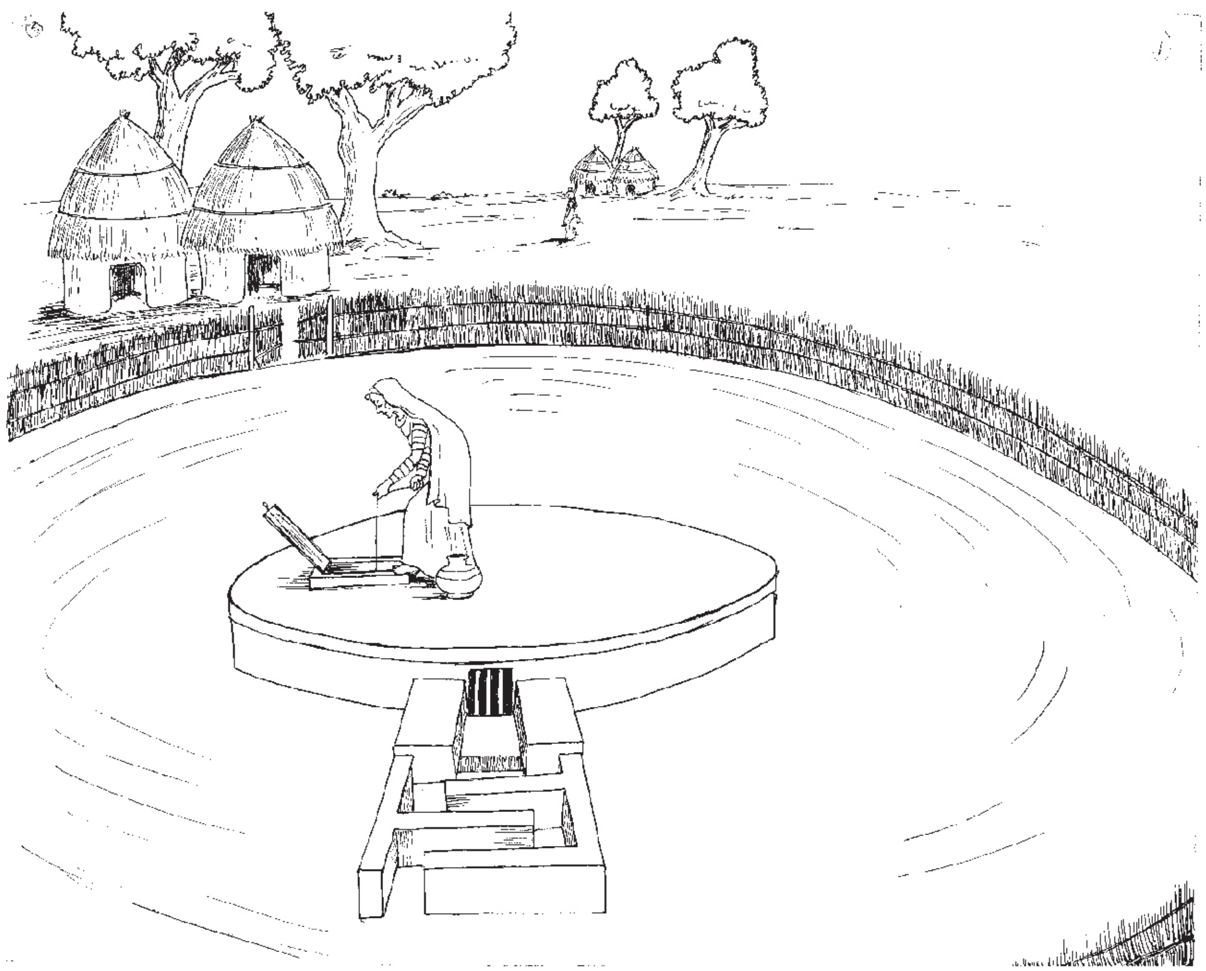

- स्वच्छ पेयजल से लीवर, पेट एवं त्वचा सम्बन्धी रोगों से बचाव होता है और वृद्धों के स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा रहता है।
- टांके की सफाई–धुलाई से निकले पानी से टांके के पास नये पेड़–पौधे लगाए जा सकते हैं जो पर्यावरण के लिये लाभप्रद हैं।
- महिलाओं को दूर से पानी लाने की परेशानी से मुक्ति मिलती है और इससे महिलाओं का समय एवं शक्ति बचती है।

- टांका किसानों का सामाजिक–आर्थिक स्तर सुधारता है। पीने के पानी के लिये 6 महीने में 4 टैंकर (5000 लीटर क्षमता वाले) पानी खरीदना पड़ता है जिसकी लागत 500 से 1000 लीटर प्रति टैंकर अर्थात् 2000–4000 रूपये पड़ती है। जबकि टांका, पानी पर खर्च होने वाले धन को बचाता है। और किसानों का आर्थिक स्तर सुधारता है। वृद्ध लोगों को भी इससे सहायता मिलती है।

सावधानियां एवं रखरखाव (देखभाल)

- पशुओं को रोकने हेतु आगोर के चारों ओर काँटों की बाड़ बनाना।
- प्रति वर्ष वर्षा से पहले आगोर की सफाई करना।
- टाँके पैंदे पर प्रति वर्ष मिट्टी जमा हो जाती है। इस मिट्टी को साफ करने हेतु टाँका निर्माण के समय टाँके में व्यक्ति के प्रवेश के लिये पत्थर की सीढ़ी बनाना तथा टाँके का मुँह आदमी के प्रवेश जितना ढक्कनदार बनाना।
- पानी के प्रवेश और निकास द्वार पर मिट्टी तथा अन्य अनावश्यक वस्तुओं को रोकने के लिये लोहे की जाली लगाना।
- पानी निकालने के लिये टाँके की छत पर लोहे के ढक्कन लगाना, जिसे ताला लगाकर बन्द किया जा सके।
- टाँके में जाने वाली मिट्टी को रोकने की नई तकनीकों के सिल्ट कैचर (मिट्टी रोक खेती) बनाना।
- पानी, घड़े में भरने तथा पशुओं को पिलाने के लिये अलग–अलग उचित स्थान बनाना।

नाड़ी

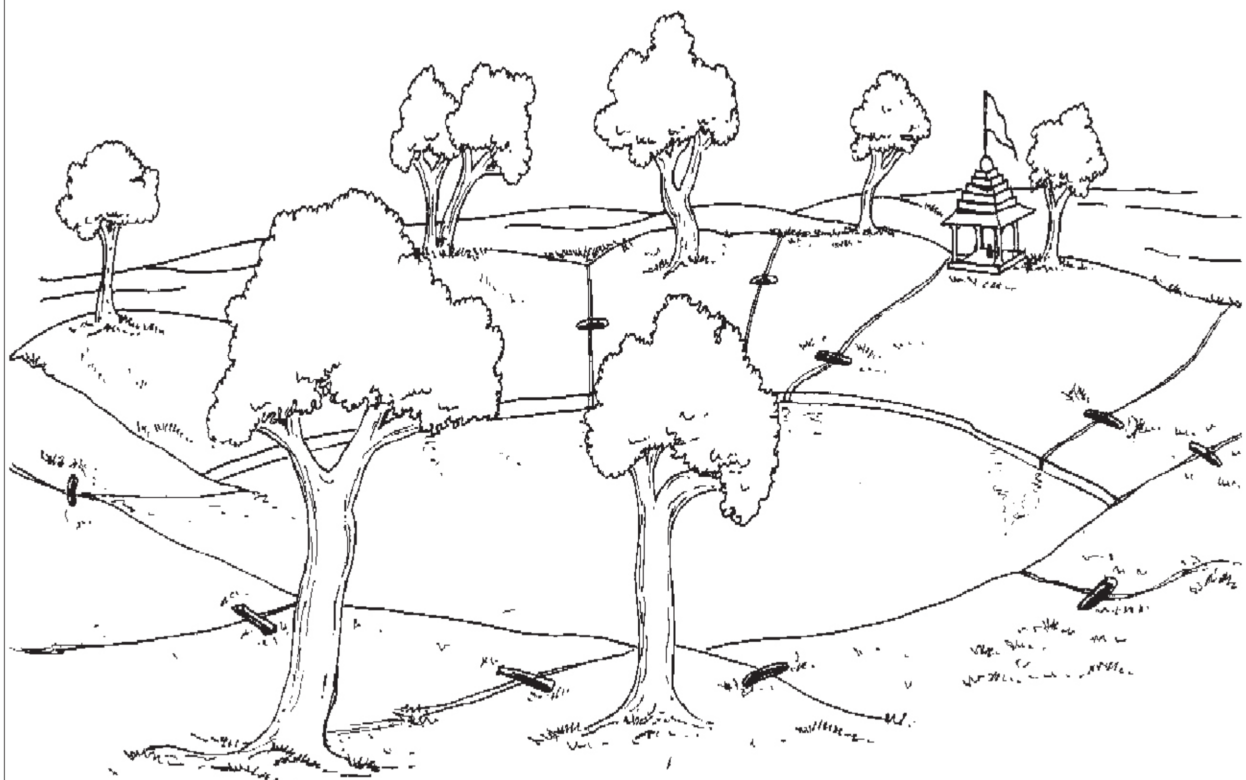

आकार के आधार पर नाड़ी या तालाब के नाम से जानी जाने वाली नाड़ी मरुस्थल की जीवन रेखा है। लोगों, पशुओं, पक्षियों आदि को पीने का पानी देने के साथ खेतों की सिंचाई व पेड़ों को भी नाड़ी से पानी मिलता है। मिट्‌टी की गुणवत्ता, भौगोलिक स्थिति, जलग्रहण क्षेत्र (आगोर) और वर्षा की स्थिति के आधार पर नाड़ी बनाई जाती है। चारों ओर ढालदार आगोर के साथ बीच में नाड़ी बनाई जाती है जिसकी तली को अभेद्य बनाया जाता है ताकि पानी भूमि के अंदर न जाए। इसको बनाने के लिए मिट्‌टी की ऊपरी सतह को खोद कर निकाल दिया जाता है और जमीन का सख्त अधोस्तर नाड़ी की तली में पानी एकत्रित करने के काम आता है। आगोर, वर्षा की मात्रा, मनुष्य एवं पशुओं की संख्या, वाष्पीकरण दर आदि के अनुसार नाड़ी में पानी कुछ महीनों से सालभर तक उपलब्ध रहता है। नाड़ी में एकत्रित पानी लंबे समय तक उपलब्ध रह सकता है यदि नाड़ी की तली ठोस व अभेद्य बनायी जाये तथा वाष्पीकरण कम करने के लिए नाड़ी के चारों ओर पेड़ लगाए जाएं। राजस्थान में पाई जाने वाली अधिकांश नाड़ियों का जलग्रहण क्षेत्र 100–500 हैक्टेयर होता है और भराव क्षेत्र 200 मीटर तक होता है,

जिसमें पानी की गहराई औसतन 5–6 मीटर होती है। सामान्यतः संग्रहण क्षमता 20,000 – 40,000 क्यूबिक मीटर तक होती है। 50 से 100 मिमी. प्रतिघंटा की गति से होने वाली 3–4 तेज बारिश से नाड़ी भर सकती है। एक गाँव में 3–4 नाड़ी होती हैं। औसत आकार की नाड़ी में एकत्रित पानी 4–6 महीने तक चल जाता है। बड़ी नाड़ी का पानी एक साल भी चल जाता है।

नाड़ी की देखभाल

- नाड़ी की देखभाल पूरा गाँव मिलकर करता है और नाड़ी के आस–पास धार्मिक स्थल बनाए जाते हैं। नाडी की देखभाल के कुछ प्रचलित तरीके निम्न हैं :–
- समय के साथ नाड़ी के तल में मिट्टी जमा हो जाती है और नाड़ी की जल संग्रहण क्षमता कम हो जाती है। अतएव ग्रामीण समुदायों द्वारा 3–5 वर्ष में एक बार नाड़ी से मिट्टी निकाली जाती है और इसी मिट्टी को नाड़ी के चारों ओर की मेड़ बनाने के काम में लेते हैं। यह मिट्टी भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए किसानों द्वारा भी काम में ली

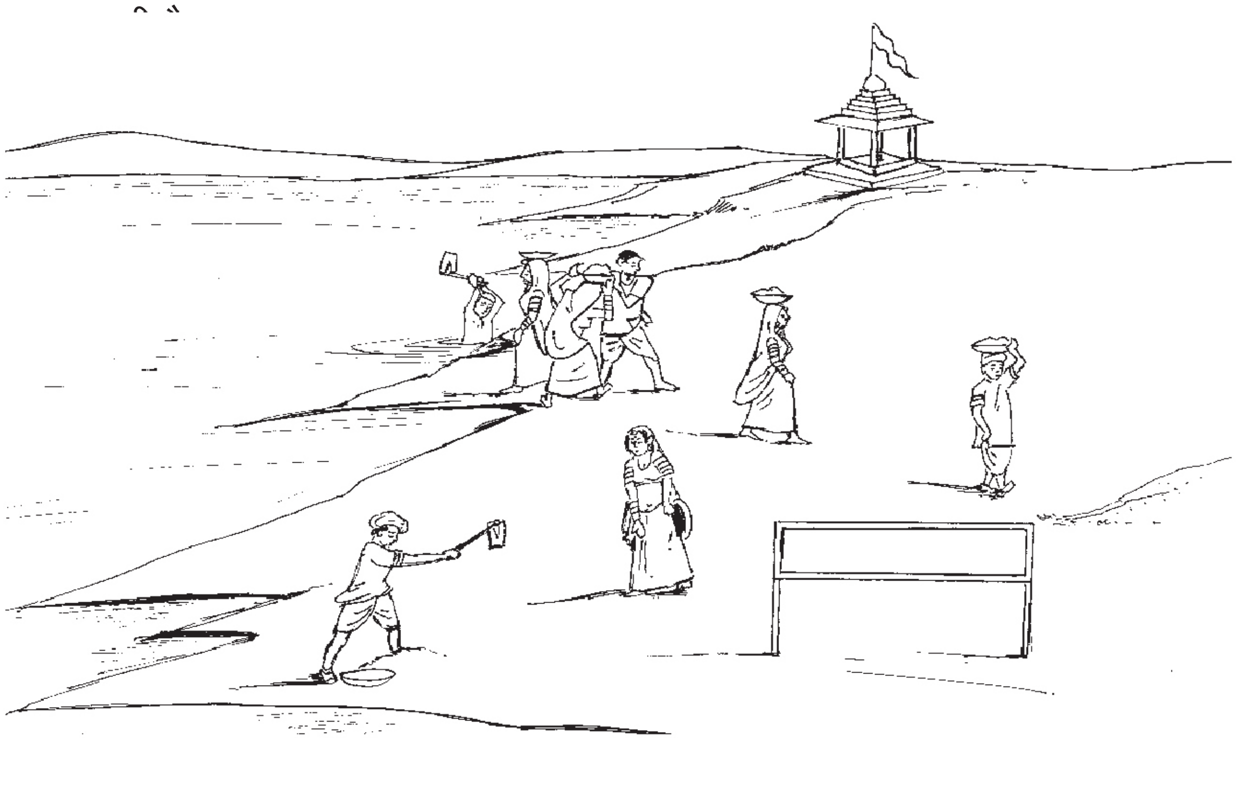

- तेज वर्षा से नाड़ी में आगोर से जल का बहाव एवं मिट्टी का कटाव अधिक होता है। अतः आगोर क्षेत्र को मिट्टी के लेप से मजबूती प्रदान करनी चाहिए।

- नाड़ी के चारों ओर पेड़ लगाए जाते है जो मिट्टी के कटाव एवं पानी के वाष्पीकरण को कम करने में सहायक होते हैं।
- नाड़ी का पानी अधिकाशंतः पीने के काम आता है। पंरतु नाड़ी क्षेत्र में पशुओं के आने व उनके मल–मूत्र से यह दूषित हो जाता है। अतः नाड़ी के पानी को शुद्ध रखने के लिए पानी में पोटेशियम परमैंगनेट डालते रहना चाहिए।

नाड़ी के जलग्रहण क्षेत्र की देखभाल :

नाड़ी में साफ पानी प्राप्त करने के लिए नाड़ी के जलग्रहण क्षेत्र (आगोर) की सुरक्षा अति आवश्यक है। इस संदर्भ में ग्रामीणों के मध्य चेतना जागृति की गई और ग्राविस के साथ परामर्श द्वारा सुरक्षा संबंधी नियम बनाए गए :

- आगोर क्षेत्र में पेड़–पौधों को काटना निषेध किया गया।
- आगोर क्षेत्र में पशुओं के घुसने एवं ग्रामीणों को मल–मूत्र जाने पर रोक लगाई और सजा का प्रावधान रखा।
- आगोर क्षेत्र में पशुओं के चारा चरने पर पाबंदी लगाई गई।
- आगोर क्षेत्र में खुदाई व खनन नहीं किया जाए।
- कुछ स्थानों पर नाड़ी के चारों ओर तारबंदी को अनुमति दी गई।

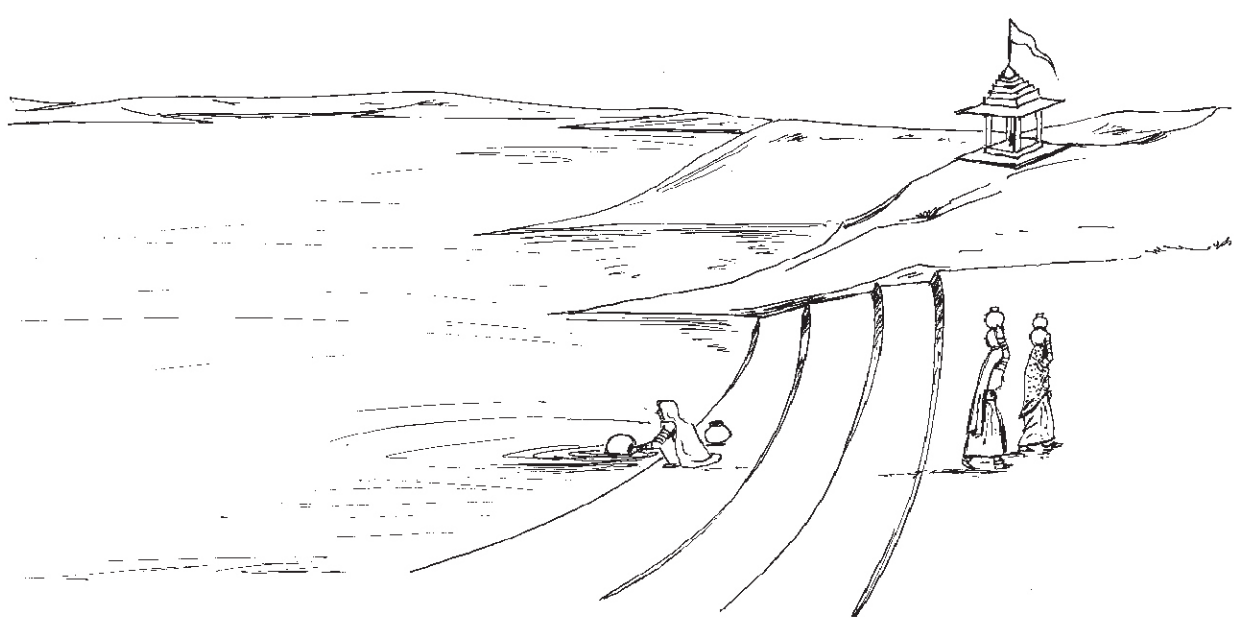

समुदाय को नाड़ी से लाभ :

- गांव के लोगों एवं पशुओं को पूरे वर्ष पेयजल की उपलब्धता।
- क्षेत्र में स्थित बेरी एवं कुओं में नाड़ी से जल का पुनर्भरण होता है जिससे पेयजल की उपलब्धता सुलभ होती है।
- घास एवं पेड़ों के रोपण को बढ़ावा दिया गया। खेजड़ी, कुमट, बोरड़ी, कैर जैसे पेड़ पौधों से ईंधन की लकड़ी, चारा, फल और सब्जी जैसे खाद्यानों की ग्रामीणों को प्राप्ति बढ़ जाती है।
- सामूहिक आयोजन और धार्मिक पर्व नाड़ी के आस पास मनाए जाते है। यह पर्यावरण को बेहतर बनाती है।

सुझाव

- तालाब या नाड़ी के किनारे किसी उपयुक्त स्थान पर बेरा (परकोलेशन वैल) बनाया जाये व ग्रामवासी पेयजल की आपूर्ति सीधे तालाब से न लेकर बेरे से लें। इससे इन्हें प्राकृतिक तरीके से छना अधिक स्वच्छ जल प्राप्त हो सकेगा।
- जहाँ भूमिगत मृदा की संरचना अनुकूल हो, वहाँ तालाब के पैंदे (बैड) में उपयुक्त संख्या में बेरियाँ बनायी जायें, ताकि तालाब सूख जाने पर पेयजल की आपूर्ति बेरियों से हो सके।
- आगोर के रख–रखाव हेतु बनाये नियमों को स्थानीय समुदाय अपनाये तथा इस हेतु वातावरण तैयार करे। आगोर से तालाब में वर्षा जल के साथ आने वाली मिट्टी को रोकने के लिये उपयुक्त स्थानों पर सूखे पत्थरों से चैक डैम्स की श्रृंखला बनायी जायें।
- राजकीय सहायता के द्वारा निर्मित होने वाले पक्के घाट बनाने जैसे कार्य को प्राथमिकता न दी जाये। समस्त तालाबों की खुदाई का कार्य कम से कम 25 प्रतिशत सामुदायिक स्वैच्छिक अंशदान तथा शेष राजकीय/संस्थागत सहायता से कराया जाये।
- जहाँ तक सम्भव हो बरसात के मौसम के बाद जल का जीवाणु परीक्षण करवाएं।

बेरी

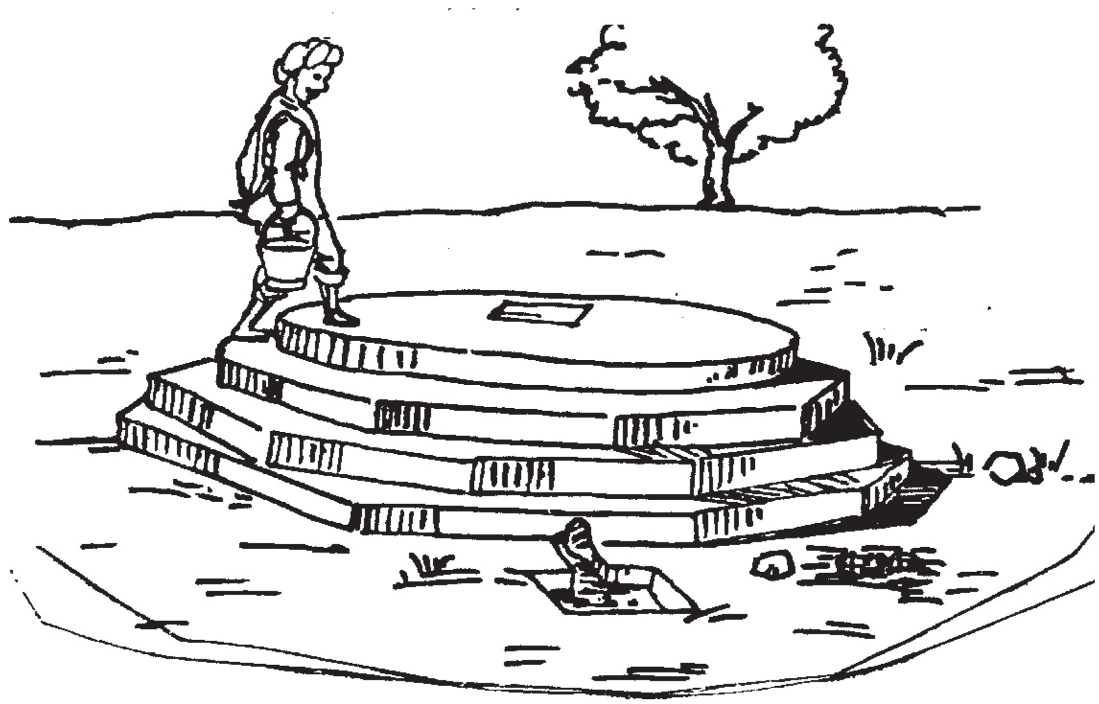

बेरी एक संकरे मुंह की उथली, भूमिगत संरचना है जिसे परकोलेशन वैल के नाम से जाना जाता है। परकोलेशन वैल इसलिए कहा जाता है क्योकि इसमें सतह के नीचे पानी स्रवण द्वारा एकत्रित होता रहता है। मरुस्थल में नाड़ी और खड़ीन वर्षा जल संग्रहण की सर्वाधिक आम संरचनाएं हैं। पंरतु ये कुछ महीने पानी काम में लेने के बाद सूख जाती हैं। इन ढांचों से 20–30 प्रतिशत पानी भूमि के नीचे रिस कर चला जाता है और जमीन की निचली सतह में एकत्र हो जाता है। यही भूमिगत पानी अकाल के समय में बेरी द्वारा काम में आता है। वास्तविकता में यह पानी रिजर्व बैंक की तरह है जो जरुरत के समय ग्रामीण समुदाय के काम आता है।

बेरी दो प्रकार की होती हैं।

(1) रिसाव बेरी (परकोलेशन)

(2) वर्षा जल संग्रहण बेरी।

(1) रिसाव बेरी :

इस प्रकार की बेरी खड़ीन व नाड़ी के पास बनाई जाती है। ये बेरियां 1–2 मीटर व्यास एवं 8–10 मीटर गहराई की होती हैं। भूमिगत पानी रिस कर इन बेरियों में आता है और यह अकाल के दिनों में बहुत कारगर हैं। पानी की उपलब्धता नाड़ी व खड़ीन के क्षेत्र में उपस्थित भूमिगत पानी की मात्रा पर निर्भर करती है। अकाल लंबा होने पर पानी प्राप्त करने के लिए बेरी को और गहरा किया जा सकता है।

निर्माण एवं कार्यविधि :

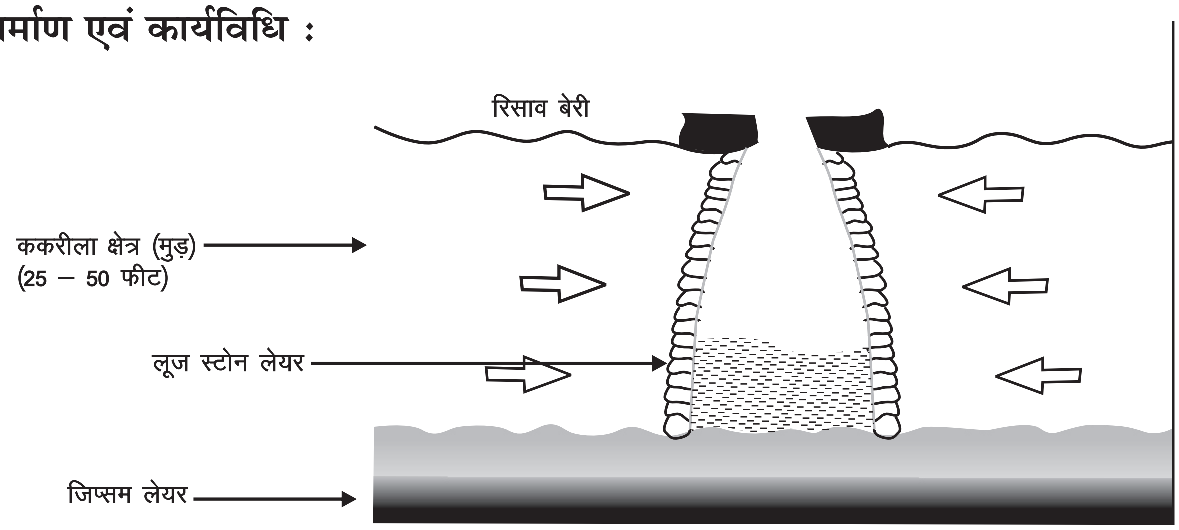

बेरी का मुंह लगभग 3 से 5 फीट व्यास का होता है तथा अधोस्तर पर इसका व्यास 5 से 10 फीट तक हो सकता है। जिप्सम लेयर से ऊपर कंक्रीट वाला क्षेत्र जिसे मुड कहा जाता है उसके नीचे जिप्सम स्तर आता है। रिसाव द्वारा जल इसमें एकत्रित होता रहता है। यह श्यानता सिद्धान्त पर कार्य करता है। बेरी की खुदाई उस गहराई तक की जाती है जब तक भूमि के अधोस्तर में जिप्सम लेयर नहीं आ जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार द्रव्य अधिकता से कम की ओर गति करता है। जल, भूजल के ढलान वाले भाग की ओर आकर संग्रहित हो जाता है। लूज स्टोन द्वारा इसकी चिनाई की जाती है, क्योंकि लूज स्टोन पानी के रिसाव को अवरोधित नहीं करता। बेरी के मुख अर्थात् भू स्तर से 3 फीट गहराई व 2 फीट ऊँचाई तक पक्की चिनाई की जाती है, ताकि बेरी धंसे नहीं। बेरी से पानी निकालने के लिये बेरी की छत पर एक छोटा ढक्कन लगा होता है, जिसे खोल कर बाल्टी व रस्सी की सहायता से पानी खींचा जा सके। साथ ही बेरी के पास एक खेली बना दी जाती है, ताकि बेकार पानी बहकर उसमें जा सके एवं पशुओं को भी सहज रुप से जल उपलब्ध हो सके।

(2) वर्षा जल संग्रहण बेरी :

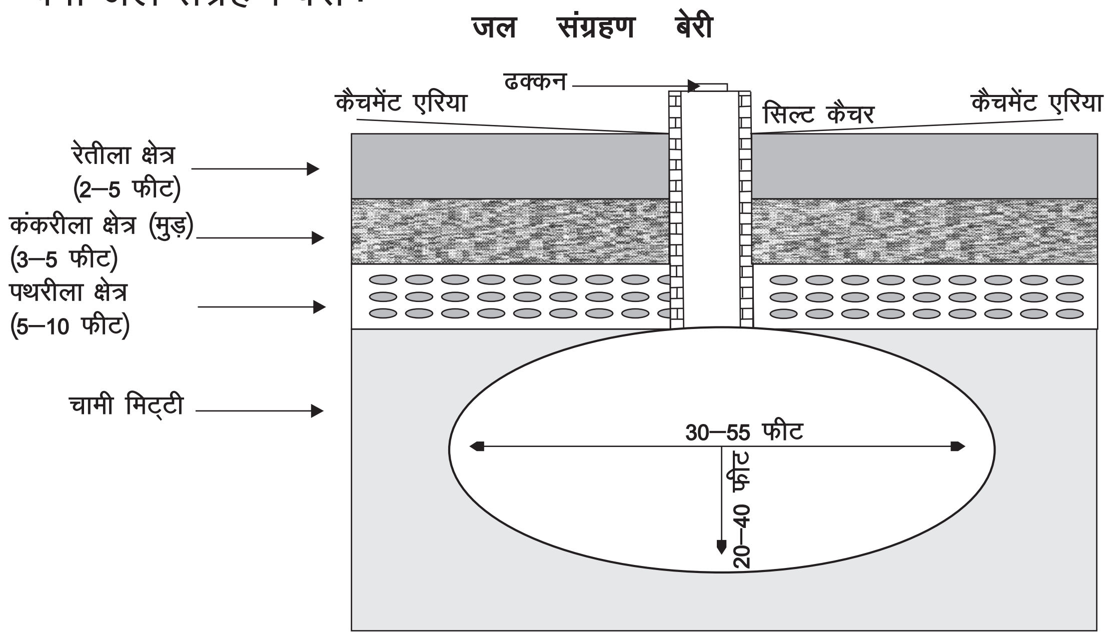

इस प्रकार की बेरियां सामान्यतः रेतीले इलाकों में पाई जाती है। बीकानेर जिले में ये बहुलता में हैं। ये उथले मुंह की मिट्टी के घड़े के समान संरचानाएं है जिन्हें जमीन से नीचे 8–10 मीटर की गहराई तक खोदा जाता है, जहाँ क्ले या जिप्सम की परत हो। चूंकि जिप्सम व क्ले की परत पानी के लिए अपरागम्य है इसलिए संग्रहित वर्षा जल का भूमिगत रिसाव नहीं होता तथा पानी अधिक समय तक एकत्रित रहता है। बेरी के मुंह की पत्थर – सीमेंट से चिनाई करी जाती है ताकि पानी निकालने में सुलभता रहे। बेरियों का मुंह पत्थर की पट्टी या लोहे के ढक्कन से ढक दिया जाता है, इसमें पानी के दूषित होने एवं वाष्पीकरण का खतरा कम हो जाता है। अपारगम्य आधार और नगण्य वाष्पीकरण के कारण इन बेरियों की भंडारण क्षमता अच्छी होती है। यह पानी का सतत स्त्रोत है और इसमें से पानी एक वर्ष से अधिक समय तक मिलता है।

विशेषता :

बेरी में पाया जाने वाला पानी वर्षा संग्रहित जल होता है और उसमें लवणीयता की अनुपस्थिति के कारण यह मीठा होता है।

- बेरी के पानी में बदबू नहीं आती है।
- यह जल हानिकारक लवणों जैसे फ्लोराइड, नाइट्रेट आदि से भी मुक्त होता है।
- चामी मिट्टी होने के कारण यह जल अवशोषित नहीं होता अतः यह वर्ष भर पानी उपलब्ध कराने की सहज तकनीक है।

- वर्षों संग्रहित रहने के उपरान्त भी इस जल में कीड़े नहीं पड़ते हैं।

लाभ :

- पूरे वर्ष परिवार के पेयजल, दैनिक आवश्यकताओं व पशुओं के पीने के पानी की उपलब्धता।
- दूरे से पानी लाने की समस्या से छुटकारा।
- अधिक रसायन वाले पानी से होने वाली बीमारियों से बचाव।
- इसमें संग्रहित पानी वर्षों तक रह सकता है।

ग्राविस द्वारा किए गए सुधार :

वर्षा के दिनों में जब खड़ीन एवं नाड़ियों में पानी भरता है तब पानी के साथ मिट्टी एवं अन्य दूषित पदार्थ आने की संभावना रहती है। अतः ग्राविस ने बेरी के ऊपरी मुंह को जमीन से ऊँचा कर इस पर ढक्कन लगवाया ताकि अवांछित वस्तुओं का पानी में प्रवेश रोका जा सके और पानी खीचने या निकालने में सुविधा हो। इस प्रकार संक्रमण के साथ पानी के वाष्पीकरण से भी बचाव होता है।

सावधानियां तथा कुछ महत्वपूर्ण बातें

- आगोर के चारों और बाड़ लगा दी जानी चाहिये, जिससे पशुओं और गन्दगी के प्रवेश पर रोक लगायी जा सके।
- पानी के प्रवेशद्वार पर अनावश्यक वस्तुओं को रोकने के लिये लोहे की जाली लगायी जाये।
- प्रति वर्ष वर्षा से पहले आगोर की सफाई करनी चाहिये।
- बेरी के पैंदे पर प्रति वर्ष मिट्टी जमा हो जाती है। इस मिट्टी को साफ करने हेतु बेरी के निर्माण के समय बेरी में व्यक्ति के प्रवेश के लिये पत्थर की सीढ़ी बनाना तथा बेरी का मुंह आदमी के प्रवेश जितना ढक्कनदार बनाना चाहिये।
- पानी निकालने के लिये बेरी की छत पर लोहे का ढक्कन लगाना चाहिये तथा पानी के उपयोग के बाद उसे बन्द किया जाये जिससे हवा के साथ मिट्टी एवं गन्दगी उसमें न मिल सके।
- बेरी में आगोर क्षेत्र से वर्षा जल के साथ जाने वाली मिट्टी को रोकने की नई तकनीकों के सिल्ट कैचर (मिट्टी अवरोधक खेली) बनाने चाहिये।

ग्रामीण विकास विज्ञान समिति (ग्राविस) एक गैरसरकारी, स्वैच्छिक संस्था है जो महात्मा गाँधी की विचारधारा से प्रेरित होकर थार मरूस्थल के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु प्रयासशील है। 1983 में स्थापित यह संस्था अब तक 50,000 परिवारों को लाभान्वित कर चुकी है। संस्था का कार्यक्षेत्र लगभग 850 गाँवों में फैला है तथा ग्राविस ने 1100 से अधिक सामुदायिक संगठनों को गठित किया है। अपने गम्भीर प्रयासों, अनुसंधान तथा प्रकाशनों के माध्यम से ग्राविस ने स्वैच्छिक जगत में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है।

ग्राविस
3/437, 458, मिल्कमैन कॉलोनी,
पाल रोड़, जोधपुर, 342008
राजस्थान, भारत

फोन : 91 291 2785 317,
2785 549, 2785 116

फैक्स : 91 291 2785 116

ई मेल : email@gravis.org.in

वेबसाईट : www.gravis.org.in

Copyright(c) 2010 GRAVIS
All rights reserved.